Chapter-5

पंचम अध्याय

भारतीय वाद्य-संगीत में बंगाल के व्हायोलिन वादकों के रूप में प्रतिष्ठित वादक कलाकार तथा उनकी वादन शैली ।

वैदिक काल से लेकर आज तक भारतीय संगीत में तन्त्री वाद्यों ने अपना महत्त्वपूर्ण स्थान बनाके रखा है । संगीत की प्रत्येक विधान में इसका महत्त्व बरकरार है । ऐसे ही एक तन्त्री वाद्य का नाम व्हायोलिन है, जिसके वर्तमान रूप को हम युरोपीय मानते हैं । भारतीय बाकी संगीत वाद्यों के साथ व्हायोलिन जैसे विदेशी वाद्य की उपस्थिति अपने आपमें एक नाविन्यपूर्ण घटना है । अन्य युरोपीय वाद्यों जैसे पियानो, गिटार, क्लैरोनेट आदि का भी प्रयोग भारतीय संगीत में देखने को मिलता है, परन्तु शास्त्रीय संगीत के लिए व्हायोलिन ही सबसे ज्यादा उपयुक्त सिद्ध हुआ ।

भारतीय संगीत में इस वाद्य का सर्वप्रथम प्रयोग दक्षिण भारत में ही आरम्भ हुआ । तत्पश्चात् उत्तर भारत के कलाकारों ने भी इस वाद्य को अपनाया ।

उत्तर भारत के अन्य प्रदेशों के समान बंगाल प्रदेश में भी व्हायोलिन वादन के क्षेत्र में अनेक कलाकारों का नाम पाया जाता है, जिन्होंने उत्तर भारत तथा बंगाल के संगीत-जगत में अपना-अपना महत्त्वपूर्ण योगदान दिया । बंगाल में तीन प्रकार के व्हायोलिन वादक है, एक वे जो भारतीय शास्त्रीय संगीत को प्रस्तुत करते हैं, दूसरे वे जो फ़िल्म तथा आधुनिक संगीत के वाद्यवृन्द में भाग लेते है और तीसरे वे जो बंगाल की कीर्त्तन संगीत के वाद्यवृन्द तथा विभिन्न प्रकार लोक-संगीत के साथ सहयोगी वादक के रूप में अपना वादन करते हैं । परन्तु इस सन्दर्भ में बंगाल के प्रतिष्ठित शास्त्रीय व्हायोलिन वादकों तथा उनकी वादन शैलियों के बारे में जानकारी दि गई है ।

पं. गगन बाबू

इनका पूरा नाम गगनचन्द्र चटर्जी है । इनका जन्म सन् 1890 में हुआ । उत्तर भारत में व्हायोलिन वाद्य को प्रचलित करने में इनका विशेष योगदान है । श्री प्रकाश नारायण के अनुसार, "व्हायोलिन जैसे विदेशी वाद्य को सर्वप्रथम उत्तर हिन्दुस्थानी संगीत में प्रयोग करने और उसे लोकप्रिय बनाने के लिए दिवंगत होते हुए भी गगन बाबू अमर हो गए"। बंगाल तथा भारत के अनेक शास्त्रीय गायक-वादक इनके व्हायोलिन वादन से प्रभावित हुए थे ।

श्री गगन बाबू के सम्बन्ध में ज्यादा जानकारी प्राप्त न होने के कारण बहुत कुछ कहना सम्भव नहीं है । जिन लोगों ने उनका वादन सुना हैं, उनके कथनानुसार वह व्हायोलिन

पर गत् शैली से वादन करते थे । इन्होंने व्हायोलिन की शिक्षा प्रसिद्ध सरोदिये करामतुल्ला खाँ से प्राप्त की । कहा जाता है कि मैहर के उस्ताद अलाउद्दीन खाँ से भी इन्हें मार्गदर्शन प्राप्त हुआ । इनके उस्ताद तन्त्रकार रहे और उनसे इन्हें गत् शैली की शिक्षा मिली। इसलिए वह व्हायोलिन में गत् शैली ही बजाते थे । सरोद एवं सितार के समान ही वह मसीतखानी, रज़ाखानी गतें, तोड़ा, छन्दबद्ध तथा तिहाइदार तान एवं झाला बजाते थे । प्रयाग में सन् 1949 में इनका देहावसान हुआ ।

डॉ. जी. एन. गोस्वामी

डॉ. जी. एन. गोस्वामी का जन्म 7 जनवरी सन् 1911 को वाराणसी में हुआ, जिसे भारत की पवित्र और धार्मिक नगरी कहा जाता है । इनके पिता का नाम श्री केदारनाथ गोस्वामी है । गोस्वामी जी का पूरा नाम गोपीनाथ गोस्वामी है । वह आकाशवाणी के प्रख्यात व्हायोलिन वादक थे ।

सन् 1926 में प्रसिद्ध व्हायोलिन वादक श्री गगन बाबू के वादन ने इन्हें बड़ा प्रभावित किया था। यहीं से व्हायोलिन सीखने की सर्वप्रथम प्रेरणा इन्हें प्राप्त हुई थी । स्वर का ज्ञान गोस्वामी जी को पहले से ही था। अतः रियाज करते-करते लगन व परिश्रम के द्वारा वह अच्छी तरह व्हायोलिन बजाने लगे थे और कई प्रतियोगिताओं में भाग लेकर पुरस्कृत भी हुए थे। बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय से गणित में एम. एस-सी. की परीक्षा उत्तीर्ण होने के साथ-साथ इन्होंने संगीत-कला के क्षेत्र में भी यथेष्ट ख्याति प्राप्त की तथा रवीन्द्र भारती विश्वविद्यालय से संगीत में पी-एच. डी. उपाधि प्राप्त की थी।

सन् 1932 में जब वह उस्ताद आशिक अली खाँ के सम्पर्क में आए तो उनसे उन्होंने अपनी व्हायोलिन शिक्षा को आगे बढ़ाने की प्रार्थना की । उस्ताद ने यह कहकर इनका दिल तोड़ दिया था कि, "व्हायोलिन तो एक विदेशी वाद्य है, क्यों फिजूल मेहनत करते हो, इसमें रखा ही क्या है"? अतः उन्होंने उनसे सितार की शिक्षा प्राप्त की और उनके बताए हुए गत् तोड़ो को अपने प्रयास के द्वारा व्हायोलिन पर सफल रूप से प्रस्तुत करने लगे। गोस्वामी जी की मेहनत को देखकर उस्ताद नाराज नहीं बल्कि खुश होकर उनकी प्रशंसा करने लगे और कहने लगे, "मैं नहीं समझता था कि एक विदेशी साज़ हमारे शास्त्रीय संगीत को इतनी अच्छी तरह पेश कर सकता है।" और उन्होंने प्रसन्नता पूर्वक व्हायोलिन सीखने की भी आज्ञा

दे दी थी । तत्पश्चात् सन् 1945 में वह उस्ताद मुश्ताक हुसैन खाँ (रामपुर) के शिष्य हुए । इनसे इन्होंने राग-ज्ञान व ख्याल गायकी का विशेष मार्गदर्शन प्राप्त किया ।

तेलगु निवासियों के सम्पर्क में गोस्वामी जी ने काफी समय तक रहकर कर्णाटक संगीत का भी भली प्रकार अध्ययन किया था । इसके अतिरिक्त वह एक अच्छे लेखक एवं चिन्तक भी थे । संगीत की विभिन्न शाखाओं पर हिन्दी, बांग्ला तथा अंग्रेज़ी भाषाओं में संगीत शिक्षण, सांगीतिक कल्पना, मानव मन पर संगीत का प्रभाव, संगीत से चिकित्सा आदि कई विषयों पर उन्होंने लेख भी लिखे । अपने व्यक्तित्त्व में संगीत और साहित्य का समन्वय करके वह एक सुन्दर आदर्श को प्रस्तुत कर गए ।

महफ़िल में व्हायोलिन बजाते समय वह श्रोताओं की रूचि और महफ़िल के वातावरण का अधिक ध्यान रखते थे और यही उनकी सफलता की कुंजी थी । वह व्हायोलिन पर विशुद्ध तन्त्रकारी प्रस्तुत करते रहे, किन्तु कुछ सालों से उनका झुकाव गायकी की ओर हुआ था । अत: गोस्वामी जी अपनी वादन में विलम्बित और मध्यलय में गायकी का अनुसरण तथा उसके पश्चात् द्रुत में तन्त्रकारी का अनुसरण करते थे । इसलिए इनकी शैली में गायन तथा वादन दोनों का समन्वय था । बनारस में रहते हुए बचपन में इन्होंने उस्ताद बिसमिल्लाह खाँ के पिता और नन्दलाल जी की शहनाई खुब सुनी थी, जिसकी छाया उनके वादन में पाई जाती थी। द्रुत लय में उस्ताद निसार हुसैन खाँ के तराने के कुछ अंश भी इनकी शैली में सम्मिलित था । इसके अतिरिक्त ठुमरी वादन में भी गोस्वामी जी को प्रवीणता प्राप्त थी। लाहौर के बशीर खाँ का व्हायोलिन वादन देखकर एवं सुनकर वह भी चारों अंगुलियों का प्रयोग अपने वादन में करने लगे। रवीन्द्र भारती विश्वविद्यालय, कोलकाता में उन्होंने अनेक वर्षों तक वाद्य विभागाध्यक्ष के पद पर कार्य किया था । इस प्रसिद्ध कलाकार का निधन लखनऊ में हुआ ।

जी. एन. गोस्वामी जैसे शिक्षित संगीतज्ञों से संगीत-कला के अनेक विद्यार्थी लाभान्वित होकर अपने भविष्य को उज्ज्वल बनाया हैं, उनके पुत्र अशोक गोस्वामी व प्रिय शिष्य कु. शुभाष मिश्रा संगीत के निगूढ़तम व्यावहारिक तथा शास्त्रीय अंगों पर गहन, मनन एवं अभ्यास करके संगीत-जगत में उच्च स्थान बनाने में सफल हुए। पुत्र अशोक गोस्वामी एक प्रतिष्ठित व्हायोलिन वादक के रूप में भी जाने जाते हैं ।

SMT. HANSA MEHTA LIBRARY
151
The M. S. University of Baroda

उस्ताद मतिउर रहमान

संगीत साधना के क्षेत्र में जिन महान संगीतकारों का योगदान प्राप्त होता है उसमें एक नाम है उस्ताद मतिउर रहमान । उस्ताद मतिउर रहमान जन-सामान्य में 'मति मियाँ' नाम से परिचित थे ।

संगीत को साधना के माध्यम से ही अपनाया जा सकता है । और यह एक या दो दिन का नहीं बल्कि कई महीने और सालों की साधना के बाद ही संगीत में दक्षता अर्जन करना सम्भव होता है । अतः देखा जाता है कि जो व्यक्ति संगीत में आत्म-समर्पण करना चाहता है, वह बाल्यावस्था से ही इस संसार की अन्य सभी कार्य से खुदको अलग रखकर एकनिष्ठ रूप से अपनी साधना करते हैं । तब संगीत ही हो जाता है उनका ध्यान, ज्ञान, साधना तथा जीवन । साधना के रास्ते से वह पहुँच जाते है संगीत के राज्य में । ऐसे ही एक संगीत साधक थे उस्ताद मतिउर रहमान ।

उनका जन्म बांग्ला सन् 1307 में पूर्व बंगाल तथा वर्तमान बांग्लादेश में हुआ । बाल्यावस्था से ही उनको संगीत में रूचि थी । उनके पिता सौदागर मियाँ एक संगीत प्रेमी थे तथा दादा खुदाबक्ष थे एक विशिष्ट बाँसुरी वादक । शैशव से ही मतिउर रहमान ने संगीत को अपना जीवन का व्रत मान लिया था । किशोर मतिउर रहमान के संगीत-प्रेम को देखकर विश्व विख्यात संगीत गुरू उस्ताद अलाउद्दीन खाँ साहब ने उन्हें संगीत साधना के लिए काफी प्रोत्साहित कीया ।

संगीत की प्रारम्भिक शिक्षा उन्होंने अपने दादा खुदाबक्ष से प्राप्त की थी । उसके बाद चाचा बरकत अली से इस शिक्षा को आगे बढ़ाया । संगीत-शिक्षा के प्रारम्भिक स्तर पर उन्होंने सरोद, क्लैरोनेट, गायन आदि का भी अभ्यास किया । प्रसिद्ध संगीत कलाकार उस्ताद अहमद अली खाँ (सरोद वादक) से उन्होंने सरोद की शिक्षा तथा उस्ताद मोहम्मद हुसैन खुसरो एवं कामिनी कुमार भट्टाचार्य से गायन की शिक्षा प्राप्त की । क्लैरोनेट की शिक्षा तथा व्हायोलिन वादन की प्रारम्भिक शिक्षा उन्हें अपने पिता सौदागर मियाँ से प्राप्त हुई थी । तत्पश्चात् वह विख्यात संगीत साधक उस्ताद आयत अली खाँ (उस्ताद अलाउद्दीन खाँ के भाई) के शिष्य हुए तथा उनसे व्हायोलिन की शिक्षा प्राप्त की। उस्ताद मतिउर रहमान को

असली शिक्षा उनसे ही प्राप्त हुई थी । समय-समय पर उस्ताद अलाउद्दीन खाँ से भी उनको मार्गदर्शन प्राप्त होता रहा । उस्ताद आयत अली खाँ से सालों तक शिक्षा ग्रहण करने के पश्चात् मतिउर रहमान एक प्रतिष्ठित व्हायोलिन वादक के रूप में परिचित हो गए । उस्ताद मतिउर रहमान एक उत्कृष्ट व्हायोलिन वादक ही नहीं, बल्कि उत्कृष्ट गायक भी थे ।

शिक्षा समाप्त होने के बाद उन्होंने संगीत-क्षेत्र में अपना कार्य आरम्भ किया । कुछ दिन एक जात्रादल में संगीत निर्देशक के पद को निभाया, उसके बाद एक दिन शिलं (त्रिपुरा) की एक महफिल में उन्होंनें गायन प्रस्तुत किया । वहाँ प्रसिद्ध संगीतज्ञ राजा बीरेन्द्रकिशोर राय चौधुरी भी मौजूद थे । उन्हें मतिउर रहमान का गायन बहुत ही अच्छा लगा और उनकी सहायता से शिलं में ही उन्होंनें अपना कर्म-जीवन आरम्भ किया ।

सन् 1947 में भारत विभाग के बाद उन्हें स्वदेश लौटने की इच्छा जाग उठी, अत: 15 साल के बाद सन् 1962 में वह शिलं से ढाका (बांग्लादेश) आ गए और तत्कालीन "रेडियो पाकिस्तान" में स्थायी कलाकार के रूप में नौकरी करने लगे, परन्तु रेडियो की नौकरी उन्हें अच्छी नहीं लगी । क्योंकि वह एक खुले दिल इनसान थे। कोई बन्धन उन्हें रूक नहीं सकता था । अत: रेडियो की नौकरी में इस्तीफा देकर उन्होंने 'छायानट' नामक विशिष्ट संगीत शिक्षालय में अध्यक्ष का पद ग्रहण किया एवं जीवन का अन्त तक उसी पद पर रहकर संगीत की सेवा की। बंगाल के संगीत-जगत में उस्ताद मतिउर रहमान ने अपना बहुमूल्य योगदान दिया।

उस्ताद आयत अली खाँ एवं उस्ताद अलाउद्दीन खाँ जैसे महान संगीतकारों से शिक्षा प्राप्त होने के कारण वह अपना वादन भी अलाउद्दीन खाँ घराने की शैली से ही प्रस्तुत करते थे । इस घराने में आलाप को ज्यादा महत्त्व दिया जाता है तथा वाद्य-संगीत की सभी अंगों का प्रयोग इस घराने की खास विशेषताएँ हैं । इस घराने के अन्य प्रतिष्ठित वादक कलाकारों के समान उस्ताद मतिउर रहमान ने भी अपने स्वतन्त्र वादन में योग्यतानुसार अलाउद्दीन खाँ घराने की वैशिष्ट्य को प्रस्फुटित करने में अपना योगदान दिया । उल्लेखनीय है कि प्रसिद्ध व्हायोलिन वादिका श्रीमती शिशिरकणा धर चौधुरी की प्रारम्भिक शिक्षा उस्ताद मतिउर रहमान से हुई एवं श्रीमती शिशिर जी को उन्होंने अत्यधिक ध्यानपूर्वक इस घराने की रागदारी की शिक्षा प्रदान की थी । बंगाल में रहकर सम्पूर्ण जीवन संगीत की सेवा करने के बाद बांग्ला सन् 1373 की 19 माघ को पूर्व बंगाल (बांग्लादेश) में उनका देहावसान हुआ ।

उस्ताद मतिउर रहमान

प्रो. रॉबीन घोष

प्रो. रॉबीन घोष भारतीय संगीत के एक उज्ज्वल नक्षत्र हैं । इनका जन्म 1 फरवरी सन् 1933 को बंगाल की कोन्नगर नामक स्थान में हुआ । इनके पिता का नाम स्व. फणीन्द्रनाथ घोष हैं । सात साल की उम्र में पिता ने श्री घोष को व्हायोलिन सीखाना शुरू किया । इनकी प्रारम्भिक शिक्षा श्री मणी मजुमदार के पास पाश्चात्य संगीत से आरम्भ हुई थी । तत्पश्चात् इन्होंने विख्यात पाश्चात्य शास्त्रीय व्हायोलिन वादक Mr. Stanley Gomes से शिक्षा प्राप्त की, जो बंगाल में रहते थे । Mr. Stanley Gomes से शिक्षा प्राप्त करते समय श्री घोष को व्हायोलिन पर गज़ का प्रयोग, अंगुली का प्रयोग तथा सुरों के विषय में अत्यधिक ध्यान रखना पड़ता था, फलतः बहुत ही छोटी उम्र से वह एक अच्छे व्हायोलिन वादक के रूप में परिचित होने लगे और उसी उम्र में ही उन्हें All India Radio, Kolkata में वादन प्रस्तुत करने का मौका मिला। उत्तर भारतीय संगीत की शिक्षा उन्होंने उस समय के विख्यात व्हायोलिन वादक तथा संगीताँचार्य पं. हरिपद चटर्जी से प्राप्त की। लगभग 12 साल श्री घोष ने उनसे शास्त्रीय संगीत की शिक्षा ली।

सन् 1952 से श्री रॉबीन घोष ने All India Radio (आकाशवाणी) की नियमित कलाकार के रूप में अपना कार्यक्रम प्रस्तुत करते रहे एवं सन् 1954 में इलाहाबाद में आयोजित सर्वभारतीय संगीत प्रतियोगिता में उन्हें प्रथम स्थान प्राप्त हुआ। उसके बाद सन् 1955 में वह उस्ताद अलाउद्दीन खाँ से शिक्षा प्राप्त करने की इच्छा से मैहर गए एवं लगभग आठ साल तक उनके सम्बन्ध में रहकर शिक्षा ग्रहण की। प्रारम्भ में पाश्चात्य शैली में व्हायोलिन सीखने के फलस्वरूप वह बहुत ही जल्द बाबा की शैली को अपनाने में सफल हुए, क्योंकि बाबा भी उसी शैली के आधार से व्हायोलिन का वादन करते थे । उस्ताद अलाउद्दीन खाँ साहब श्री रॉबीन घोष से सन्तुष्ट होकर उन्हें "Government Music College of Maihar" में पहले अध्यापक एवं उसके बाद कार्यकारी प्राध्यापक के पद पर नियुक्त किया।

यह उल्लेख करना आवश्यक है कि श्री घोष को असली तालीम संगीत गुरू बाबा अलाउद्दीन खाँ साहब से ही प्राप्त हुई । सन् 1960 में गुरू की परामर्श से उन्होंने इलाहाबाद में आयोजित सर्वभारतीय संगीत-सम्मेलन में भाग लिया और अपना कार्यक्रम प्रस्तुति के लिए उन्हें सम्मान के साथ स्वर्णपदक भी प्राप्त हुआ । उनके शिक्षा काल में व्हायोलिन कलाकार

गत् शैली को ज्यादा पसन्द नहीं करते थे, परन्तु श्री घोष ने अपने प्रयास से बाकी भारतीय शास्त्रीय वाद्यों जैसे - सितार, सरोद आदि के समान व्हायोलिन पर भी गत्कारी शैली तथा आलाप में जोड़ अंग की अभ्यास करके उसे एक उच्च स्थान प्राप्त करवाया । कण्ठ-संगीत के भाँति नोम्-तोम् का आलाप भी वह व्हायोलिन पर करते हैं । वह जिन स्वरों में व्हायोलिन को मिलाते हैं म़ सा प रें (G D A E) पाश्चात्य सुर में उसमें मन्द्र-सप्तक के मध्यम स्वर तक प्रयोग किया जा सकता है, परन्तु उस्ताद अलाउद्दीन खाँ परम्परा में पूरे मन्द्र-सप्तक का खास प्रयोग होता है। अतः गुरू के कहने पर उन्होंने सन् 1957 में व्हायोलिन में पाँचवा तार (मन्द्र-सप्तक के लिए) युक्त करने का कार्य किया। फलस्वरूप अलाउद्दीन खाँ परम्परा के महत्त्वपूर्ण तथा विशेष अंग 'बिरार-अंग' को सितार-सरोद के समान व्हायोलिन में प्रस्तुत करना भी उनके लिए सरल हो गया । उल्लेखनीय है कि श्री रॉबीन घोष को अपने पाश्चात्य गुरू से व्हायोलिन निर्माण के विषय में भी शिक्षा मिली थी ।

प्रो. घोष को समय-समय पर अनेक उपाधि भी प्राप्त हुई, जैसे -

1. संगीत गुणकार (By All India Music Conference Trust in Calcutta in 1954)
2. सुर मणि (By Sur Samsad of Bombay)
3. संगीत दिशारी (By The critics association)
4. संगीत सरगम (By The Hon'ble Finance Minister of Tamil Nadu on behalf of the cultural centre of Performing Arts in the year 1986)

उन्होंने भारत के विभिन्न शहर के अतिरिक्त विदेशों में जैसे - इंग्लैण्ड, अमरीका, जर्मन आदि देशों में भी अपना कार्यक्रम प्रस्तुत करके श्रोताओं का मनोरंजन किया ।

श्री घोष मैहर घराने की रागदारी के अनुसार ही अपना वादन करते है । इस घराने में आलाप का विशेष महत्त्व रहता है तथा आलाप-विस्तार में ध्रुपद शैली का प्रयोग किया जाता है । वाद्य-संगीत की दश या द्वादश अंग अर्थात सभी अंगों का प्रयोग मैहर घराने की आलाप-विस्तार में किया जाता है । गत् के लिए मसीतखानी और रज़ाखानी पद्धति की गते जिस प्रकार से सरोद-सितार में प्रयोग होती है उसी प्रकार वह व्हायोलिन पर भी विलम्बित और द्रुत त्रिताल में उन्हीं गतों का वादन किया करते हैं, परन्तु उसमें सरोद-सितार में बजनेवाले बोलों को छोड़कर सिर्फ स्वरों का प्रयोग होता है । त्रिताल के अतिरिक्त झपताल,

एकताल, झुमरा इत्यादि तालों में भी वह गत् का वादन करते हैं। विलम्बित गत् के विस्तार तथा तानों में मीण्ड-गमक का प्राधान्य रहता है । तानों के लिए पाँच गुन, छः गुन, सात गुन, आठ गुन इत्यादि लयकारी का प्रयोग तथा द्रुत गत् में विभिन्न प्रकार के छन्द-वैचित्र्यवाला तानों का प्रयोग उनके वादन को विशेष महत्त्व प्रदान करता है । विलम्बित गत् में तिहाइयों का प्रयोग वादन को बहुत मनोरंजक तथा माधुर्यपूर्ण कर देता है, उसी प्रकार द्रुत में भी लम्बी तिहाइ का प्रयोग मनोरंजक होता है । अन्त में तन्त्रकारी के अंग के हिसाब से वह द्रुत लय में झाला वादन करते हैं, जो अत्यन्त प्रभावित करता है । सितार व सरोद में जब झाला वादन किया जाता है, तब चिकारी के तार का प्रयोग बढ़ जाता है। व्हायोलिन में चिकारी का तार नहीं होता, किन्तु प्रो. रॉबीन घोष जब व्हायोलिन में झाला वादन करते हैं, तब वह 'सा' अर्थात 'D' String पर गज़ का प्रयोग ठीक उसी प्रकार करते हैं जिस प्रकार सितार, सरोद में चिकारी के तार का प्रयोग होता है, जो बहुत ही प्रभावपूर्ण और जन-सामान्य को रूचिकर लगनेवाला होता है । झाला की यह नई उपज उनकी अपनी ही सृष्ट शैली है । झाला प्रस्तुति के अन्त में वह एक ही गज़ में अनेक स्वरों के प्रयोग से तान बजाते हैं और उसके बाद एक मस्तीभरी तिहाइ से अपना वादन समाप्त करते हैं । शास्त्रीय संगीत के अतिरिक्त वह व्हायोलिन के अलग-अलग Scale पर विभिन्न प्रकार के बंगाली गीतों का वादन भी करते हैं, जो अत्यन्त माधुर्यपूर्ण प्रस्तुति होती है ।

श्री रॉबीन घोष 'तानसेन संगीत संघ' एवं 'अली अकबर कॉलेज ऑव् म्युजिक' में शिक्षक रह चुके हैं तथा 'रवीन्द्र भारती विश्वविद्यालय कोलकाता' के वाद्य विभाग में अनेक वर्ष तक अध्यापक का पद निभाने के बाद वर्तमान में वे सेवानिवृत्त हैं । इनके सुपुत्र श्री रंजन घोष भी बंगाल प्रदेश में एक प्रतिष्ठित व्हायोलिन वादक हैं तथा संगीत से जुड़े हुए अपने कार्य को निभा रहे हैं ।

प्रो. रॉबीन घोष

श्री परितोष शील

संगीत-जगत का एक बहुत ही परिचित नाम है श्री परितोष शील । बंगाल तथा भारत की एक प्रतिष्ठित व्हायोलिन वादक के रूप में उन्होंने अपना नाम स्थापित कर लिया है। बाल्यावस्था से ही श्री परितोष शील को संगीत में रूचि थी। उनका जन्म कोलकाता के फ़कीर चक्रबर्ती लेन में एक संगीत परिवार में हुआ। उनके चाचा सुरेन शील एक प्रसिद्ध व्हायोलिन वादक थे । घर में पढ़ाई के साथ-साथ संगीत की चर्चा भी चलती थी ।

गायन-वादन के कहीं आयोजन की ख़बर सुनते ही वह वहाँ पहुँच जाते थे, और अगर जात्रा हो तो कोई बात ही नहीं उठती । ऐसा ही एक दिन जात्रा दल का अभ्यास चलते समय श्री परितोष शील का संगीत-जगत में प्रवेश हुआ। तब नौ साल के बालक थे परितोष शील। गाँव में एक जात्रा का दल आया। दिन में चलता था जात्रा दल का अभ्यास और रात को कार्यक्रम प्रस्तुति। एक दिन रिहर्सल में हार्मोनियम वादक हाज़िर नहीं था, तो जात्रा दल के निर्देशक से अनुमति लेकर बालक परितोष ने हार्मोनियम वादन किया । उनका वादन सुनकर वहाँ के सभी लोग आश्चर्यचकित हो गए । चाचा ने भी सुना । उनको बालक परितोष के अन्दर संगीत का गहरा प्रेम दिखाई दिया । उन्होंने बालक के हाथ में एक व्हायोलिन देकर संगीत साधना आरम्भ करवायी । देढ़ साल चाचा के पास शिक्षा ग्रहण करने के बाद उनकी शिक्षा पाश्चात्य व्हायोलिन वादक तथा शिक्षक डॉ. सनड्रे से आरम्भ हुआ । डॉ. सनड्रे से 14 साल शिक्षा प्राप्त करके श्री परितोष शील उस समय की विख्यात म्याडन कम्पनी में व्हायोलिन वादक की नौकरी करने लगे । उसके बाद कर्णाटक, मद्रास, बैंग्लोर शहर घुमकर वापस कोलकाता आए और यहाँ 'शो हाउस' में नौकरी मिली। यहाँ उनका परिचय विद्रोही कवि काज़ी नज़रूल इस्लाम से हुआ और कवि की सहायता से श्री शील को H. M. V की ग्रामोफोन कम्पनी में नौकरी मिली ।

विख्यात उस्ताद ज़मीरूद्दीन खाँ उस समय H. M. V में प्रशिक्षक थे। वह परितोष शील का वादन सुनकर बहुत ही खुश हुए और श्री शील को शिष्य बनाने के लिए तैयार हो गए । श्री शील भी इसी दिन के इन्तज़ार में थे । क्योंकि उन्हें ऐसा लग रहा था कि और सीखने कि ज़रूरत है । उस्ताद के कहने पर वह तुरन्त राज़ी हो गए और गण्डा बन्धवाकर उस्ताद ज़मीरूद्दीन खाँ साहब के शिष्य हो गए । सन् 1929 से 1941 तक् यह 12 साल

उन्होंनें उस्ताद ज़मीरूद्दीन खाँ से हिन्दुस्तानी संगीत की शिक्षा प्राप्त की। दिन में H. M. V की नौकरी और रात को संगीत की साधना चलता रहा । उस समय प्रसिद्ध व्हायोलिन वादक मि. मेज़ से उनका परिचय हुआ और उनसे श्री शील ने दो साल पाश्चात्य संगीत की शिक्षा प्राप्त की। इस प्रकार से श्री परितोष शील एक प्रतिष्ठित व्हायोलिन वादक के रूप में परिचित हो गए । संगीत-जगत में उनका नाम भी अन्य प्रतिष्ठित व्हायोलिन वादकों के साथ जुड़ गया। जगत विख्यात व्हायोलिन वादक मारिओ वी. जर्जिओ उनका वादन सुनकर उन्हें 'मेन्यूहीन ॲव़ बेंगल' का ख़िताब दिया एवं यहूदी मेन्युहीन ने खुद उनकी खूब तारीफ़ भी की।

उनकी वादन शैली के बारे में कहाँ जाय तो वह प्राच्य तथा पाश्चात्य दोनों ही शैलियों का प्रयोग करते थे । अपने व्हायोलिन का सुर रें प सा म़ (E A D G) अर्थात पाश्चात्य पद्धति में मिलाते थे। गज़ तथा अंगुली का प्रयोग वह पाश्चात्य तथा भारतीय दोनों शैली में ही करते थे और उससे उनके वादन सें एक अलग सी मिठास पैदा होती थी। पाश्चात्य तथा भारतीय शास्त्रीय संगीत के अलावा वह व्हायोलिन में बंगाली गीतों का वादन भी करते थे। एक सहयोगी वादक के रूप में तथा विभिन्न नाटक और फ़िल्मों के पृष्ठभूमि में भी सफलता के साथ अपना वादन करके उन्होंने काफी सुनाम अर्जित किया है । अन्त में इतना कहाँ जा सकता है कि श्री परितोष शील एक सम्पूर्ण व्हायोलिन वादक थे । बंगाल तथा भारत के संगीत-जगत में अनेक प्रतिष्ठित एवं परिचित व्हायोलिन वादकों के साथ उनका नाम भी बड़े आदर से लिया जाता है ।

श्री परितोष शील

प्रो. शिशिरकणा धर चौधुरी

व्हायोलिन के स्थापित कलाकारों में एक नाम है शिशिरकणा धर चौधुरी । इस सुप्रसिद्ध व्हायोलिन वादिका का जन्म सन् 1937 को त्रिपुरा राज्य (असम) के शिलं शहर में हुआ। इनके परिवार में संगीत का सदैव महत्त्व रहा है । इनके पिता एक चिकित्सक थे, परन्तु चिकित्सक होते हुए भी वह हृदय से एक संगीत प्रेमी थे । घर में सांगीतिक परिवेश था और इसी सांगीतिक परिवेश ने शिशिरकणा के मन में विशेष प्रभाव डाला। पिता की इच्छा थी कि पुत्री एक संगीत कलाकार बने, इसी इच्छा से पिता ने एक व्हायोलिन लाकर पुत्री के हाथ में दिया । उस समय शिशिरकणा की उम्र 7 साल की थी । उस उम्र में उनकी प्रारम्भिक शिक्षा उस्ताद मतिउर रहमान (मति मियाँ) से आरम्भ हुई जो उस्ताद अलाउद्दीन खाँ एवं उनके भाई उस्ताद आयत अली खाँ के योग्य शिष्य रहे । उस्ताद मति मियाँ ने शिशिरकणा को अधिक प्यार के साथ अपनी पुत्री समान मानकर संगीत-शिक्षा दी और धीरे-धीरे अलाउद्दीन खाँ घराने की शैली इनके वादन में स्पष्ट दिखाई देने लगी । अब पिता इनको भारत के प्रसिद्ध व्हायोलिन वादक पं. वी. जी. जोग के पास ले गए तथा उनसे इनकी शिक्षा आरम्भ हुई। पं. वी. जी. जोग से श्रीमती शिशिर जी बाल्यकाल में ही इतनी प्रभावित हो गई कि 15-16 घण्टे अभ्यास करने की भावना जागृत हो गई। स्व. पं. गजाननबुवा जोशी और विश्वविख्यात नोबल पुरस्कार प्राप्त यहुदी मेन्यूहिन के व्हायोलिन वादन ने भी इन्हें प्रभावित किया ।

अपने अभ्यास और प्रयास के द्वारा श्रीमती शिशिरकणा जल्द ही संगीत-जगत में एक उच्च्व स्थान प्राप्त करने में सफल हो गई । इन्हें आचार्य टी. एल. राना से संगीत शास्त्र का मार्गदर्शन प्राप्त हुआ । अपने ज्ञान भण्डार को बढ़ाने और अपनी कला को अधिक समृद्ध करने की दृष्टि से इन्होंने रामपुर घराने की परम्परा से जुड़ना उचित समझा । बाबा अलाउद्दीन खाँ के सुपुत्र प्रसिद्ध सरोद वादक उस्ताद अली अकबर खाँ से शिशिर जी ने तन्त्रकारी की विशेष शिक्षा प्राप्त की । इनके संगीत-जीवन को पूर्ण बनाने में गुरू उस्ताद अली अकबर खाँ का विशेष योगदान है ।

जीवन का पहला पुरस्कार उन्हें 1953 में 'सर्वभारतीय तानसेन-विष्णु दिगम्बर' प्रतियोगिता से मिला था जहाँ उन्होंने प्रथम स्थान प्राप्त किया और उन्हें विष्णु दिगम्बर पुरस्कार तथा स्वर्ण-पदक प्राप्त हुआ। अपने जीवन का प्रथम कार्यक्रम इन्होंने सन् 1956 में

रेडक्रॉस कॉन्फ़्रॅन्स, कोलकाता में प्रस्तुत किया था । इस कार्यक्रम में इनके साथ पं. किशन महाराज जी ने तबला संगत की थी। इस सफल कार्यक्रम के पश्चात् शिशिर जी ने नित नए आयाम स्थापित किए ।

सन् 1971 में श्रीमती शिशिर जी रवीन्द्र भारती विश्वविद्यालय कोलकाता में व्हायोलिन शिक्षक का पदभार ग्रहण किया और वहाँ लगभग 20 साल तक् सेवायुक्त रहीं। वहाँ वे कण्ठ-संगीत विभाग में अध्यक्ष तथा वाद्य विभागाध्यक्ष एवं अध्यापक के पद पर कार्यरत रहीं। शिशिर जी All India Radio तथा National T. V की नियमित कलाकार हैं।

श्रीमती शिशिर जी उत्तर भारतीय शास्त्रीय संगीत की एक प्रसिद्ध तथा ध्रुपद शैली की व्हायोलिन वादिका के रूप में जानी जाती है । उनके वादन के विषय में बंगाल तथा भारत के प्रसिद्ध तबला वादक स्वपन चौधुरी ने कहा है कि - "Her music is just like meditation, it is very deep. She is a great performer and a great teacher" उन्होंने और भी कहा - "She has a unique style of playing. In which she uses certain Sarod techniques of plucking the strings. She combines gayaki, a vocal style, with an instrumental style blending it in a way that is very rare". Professor George Ruckert of MIT (Violinist, musical scholar and co-author of "The Classical Music of North India, The Music of the Baba Allauddin Gharana as taught by Ali Akbar Khan") ने कहा - "She is one of the finest violinists in India. The basics of SisirKona Dhar Chowdhary's wonderful technique can be taught to musicians of all levels and is applicable to all bowed instruments, both Eastern and Western".

श्रीमती शिशिरकणा भारत तथा विश्व के विभिन्न देशों में अपने कार्यक्रम प्रस्तुत करके श्रोताओं के मन में एक उच्च स्थान बनाने में सफल हुई। शिशिर जी अपने लम्बे पारम्परिक और सुन्दर आलाप के लिए विशेष रूप से प्रसिद्ध हैं। उनको उत्तर भारतीय शास्त्रीय संगीत की ध्रुपद शैली की प्रतिनिधि व्हायोलिन वादिका कहा जाता है ।

सामान्यत: व्हायोलिन में चार तारों को लगाया जाता है, किन्तु वह अपने व्हायोलिन में पाँच तारों को लगाती हैं जिसका प्रयोग बंगाल में काफी देखने को मिलता है । इन्हें स़ा (मन्द्र),

प़ (मन्द्र), सा (मध्य), प (मध्य), सां (तार) स्वरों में मिलाती हैं। इस ढंग से व्हायोलिन मिलाने पर इनका कहना है कि, "इस प्रकार से तार मिलाने के कारण गायकी के साथ गत्कारी को भी उत्तम ढंग से प्रस्तुत कर पाती हूँ"। वह आलाप, जोड़, झाला में 'आलाप के अंगों' का यथायोग्य निर्वाह करती हैं । पं. वी. जी. जोग एवं उस्ताद अली अकबर खाँ जैसे तन्त्रकारों से शिक्षा प्राप्त होने के कारण इनके वादन में भी तन्त्रकारी का स्पष्ट प्रभाव दिखाई देता है । लम्बी सूत और घसीट, विभिन्न प्रकार की आकर्षक मुर्कियाँ, गमक आदि इनके वादन की जहाँ विशेषताएँ हैं, वहीं इनके वादन में तिहाइयों एवं झाले का भी एक विशेष महत्त्व है । इनकी मान्यता है कि व्हायोलिन एक स्वयं सम्पूर्ण वाद्य है । इसलिए इसमें जितना अच्छा ख्याल शैली का वादन किया जा सकता है उतना ही अच्छा गत् शैली का भी वादन किया जा सकता है । इसी प्रकार आवश्यकतानुसार पश्चिम की व्हायोलिन तकनिक का भी प्रयोग किया जा सकता है ।

व्हायोलिन के समान ही, किन्तु आकार में थोड़ा बड़ा एक वाद्य होता है, जिसे व्हायोला कहा जाता है। इस गम्भीर वाद्य पर शिशिर जी जो आलाप जोड़ का कार्य करती हैं, वह अत्यन्त प्रभावशाली और मन को छू देनेवाला होता है । इस विषय पर विदेशी संगीतकारों का कहना है कि - "Violinist SisirKona Dhar Chowdhury also plays the Viola and may be the first musician to choose to play it as a concert instrument in the North Indian Classical tradition. With its deep sonorous tone, she finds it especially suitable for the rendering of the beautifully solemn alap in dhrupad style". वर्तमान में वह 'अली अकबर खाँ म्युजिक कॉलेज' में व्हायोलिन वादन की शिक्षा देने में व्यस्त हैं । वहाँ वह उस्ताद अलाउद्दीन खाँ विषयक प्राध्यापक तथा अध्यक्ष एवं वाद्य विभागाध्यक्ष के पद पर कार्यरत हैं। साल में दो बार बंगाल आकर भी विद्यार्थीओं को व्हायोलिन वादन की शिक्षा दे रहीं हैं तथा संगीत सम्बन्धी अपने महत्त्वपूर्ण कार्यों को निभा रहीं हैं। उनके अनेक विद्यार्थी संगीत-क्षेत्र में प्रतिष्ठित होकर अपने-अपने कार्य कर रहे हैं। अन्त में इतना कहा जा सकता है कि संगीत-जगत में श्रीमती शिशिरकणा धर चौधुरी के योगदान की बंगाल तो क्या पूरे विश्व को जरूरत है ।

प्रो. शिशिरकणा धर चौधुरी

पं. रघुनाथ दास

व्हायोलिन के प्रतिष्ठित कलाकारों में एक नाम है पं. रघुनाथ दास, इनका जन्म फरवरी सन् 1926 को पूर्व बंगाल तथा वर्तमान बांग्लादेश के राजशाही शहर में एक सांगीतिक परिवार में हुआ । इनके पिता फकीरचन्द एक संगीत प्रेमी तथा वाद्य-संगीत के कलाकार थे । इन्होंने अपनी प्रारम्भिक शिक्षा अपने पिता से प्राप्त की। पिता की मृत्यु के बाद उन्होंने राजशाजी तालन्दर जमिन्दार के सभा वादक श्री योगेशचन्द्र दास के पास अपनी व्हायोलिन की शिक्षा को आगे बढ़ाया। तत्पश्चात् पश्चिम बंगाल के वर्धमान में श्री आकिंचन दत्त से भी इन्होंने शिक्षा प्राप्त की। उसके बाद श्री रघुनाथ दास वर्धमान से कोलकाता गए और वहाँ प्रसिद्ध सरोद वादक पं. राधिकामोहन मैत्र (जिन्हें प्यार से लोग राधु बाबू कहते थे) एवं उनके छोटे भाई रवीन्द्रमोहन मैत्र से ध्रुपदी संगीत की विशेष मार्गदर्शन प्राप्त की। कोलकाता से राजशाही वापसः लौटने के बाद पं. हरिपद दास से भी उन्होंने ज्ञान अर्जित किया। यह कलाकार 'बांग्लादेश बेतार, राजशाही' (Radio Bangladesh, Rajshahee) में आरम्भ से ही युक्त रहकर अपना कार्य करने के पश्चात् वहाँ से सेवानिवृत्त हुए। वे बांग्लादेश टेलिवीज़न (BTV) के नियमित कलाकार थे । उन्होंने अपने जीवन में अनेक बड़े-बड़े संगीत सम्मेलनों में भाग लिया । इनमें बांग्लादेश सरकार द्वारा आयोजित भारत, पाकिस्तान, नेपाल और बांग्लादेश के कलाकारों के समन्वय से संगठित सम्मेलन विशेष उल्लेखनीय है । अनेक पुरस्कार तथा उपाधि प्राप्त कर उन्होंने अपने संगीत-जीवन को सम्पूर्ण बनाया। सन् 1996 में बांग्लादेश, भारत तथा पाकिस्तान इन तीनों देशों के समन्वय से आयोजित अन्तरराष्ट्रीय संगीत सम्मेलन में उन्हें 'पण्डित' उपाधि प्रदान की गई ।

पं. रघुनाथ जी का वादन मुख्यतः तन्त्रकारी और गायकी का मिश्रण रहा। दोनों शैलियों के मुख्य अंगों को वह अपने वादन में यथायोग्य रूप से प्रस्तुत करते थे। इनकी असली शिक्षा पं. राधिकामोहन मैत्र से होने के कारण वह अपने वादन में उन्हीं की शैली का ही अनुसरण करते थे। यहाँ उल्लेखनीय है कि पं. राधिकामोहन मैत्र ने अपने स्वयं के चिन्तन और मनन से तत्कालीन प्रचलित सरोद शैली में ख्याल शैली का संमिश्रण किया तथा इनकी कला मुख्यतः परम्परानुयायी होने के कारण 'आलाप के अंगों' का यथायोग्य निर्वाह वह अपने वादन में करते थे ।

अतः तन्त्रकारी के साथ गायकी के मिश्रण करने के कारण पं. रघुनाथ जी का व्हायोलिन वादन अपने ढंग का निराला एवं सुमधुर था। किसी भी गायन या वादन शैली से कोई अच्छी चीज़ लेकर अपनी वादन शैली में उसका अन्तर्भाव करने में उन्होंने कभी संकोच नहीं किया। आलाप तथा विस्तार वादन में वह विशेष सिद्धहस्त थे। मीण्ड-गमक का काम भी वह बहुत उत्कृष्टता से करते थे। आलाप के बाद विलम्बित और द्रुत लय में स्थायी-अन्तरा और उसमें सुरीला विस्तार तथा जोड़ का काम करने के पश्चात् वह विभिन्न छन्दयुक्त एवं द्रुत तानों का वादन करते थे । वाद्य-संगीत के अन्तिम वादन अर्थात झाला को भी तैयारी के साथ प्रस्तुत करते थे । इसके अरिरिक्त ठुमरी एवं बंगाली गीतों को भी वह आकर्षक रूप में प्रस्तुत करते थे । इनके वादन को गायकी और तन्त्रकारी का मिला-जुला रूप कहना अधिक उचित होगा । इनके अपने कठिन प्रयासों और कार्यों ने ही इनको अपने क्षेत्र में प्रतिष्ठा दिलवायी । 7 जनवरी, सन् 2002 को राजशाही में पं. रघुनाथ दास स्वर्गवासी हो गए ।

पं. रघुनाथ दास

श्रीमती सुलया बैनर्जी

बंगाल प्रदेश की और एक प्रसिद्ध व्हायोलिन वादिका का नाम है श्रीमती सुलया बैनर्जी । श्रीमती सुलया बैनर्जी का जन्म 24 जुलाई, सन् 1949 को असम के गौहाटी शहर में एक सांगीतिक परिवार में हुआ। इनके पिता श्री ताराचरण बैनर्जी एक प्रतिष्ठित शास्त्रीय गायक थे एवं माता श्रीमती आशाराणी बैनर्जी भी गायिका थी। पिता बैनर्जी से ही इनकी प्रारम्भिक शिक्षा कण्ठ-संगीत से आरम्भ हुई। संगीत-क्षेत्र में प्रतिष्ठा प्राप्ति के लिए अपने बड़े भाई आलोमय बैनर्जी से भी इनको काफी सहायता प्राप्त हुई। बाद में आवाज़ में थोड़ा दोष आ जाने से कण्ठ-संगीत की शिक्षा छोड़नी पड़ी एवं अपनी संगीत-शिक्षा के लिए इन्होंने व्हायोलिन वाद्य को ही अपनाना उचित समझा ।

व्हायोलिन में इनकी प्रारम्भिक शिक्षा अपने चाचा हीरालाल बैनर्जी से हुई जो आकाशवाणी में नौकरी करते थे । सन् 1966 में प्रसिद्ध व्हायोलिन वादक पं. वी. जी. जोग अपना कार्यक्रम प्रस्तुत करने के लिए गौहाटी गए । उस समय श्रीमती बैनर्जी तबले का भी अच्छी वादन करती थी । उन्होंने पं. जोग जी के साथ तबले की संगत की। संगत से जोग साहब काफी खुश हुए तथा 'सुलया' नाम के अर्थ की बहुत तारीफ़ भी की। तत्पश्चात् सन् 1967 से श्रीमती बैनर्जी को पं. वी. जी. जोग से व्हायोलिन सीखने का सौभाग्य प्राप्त हुआ । उस समय पं. जोग साहब डिप्टी चीफ म्युज़िक प्रोड्युसर, हिन्दुस्तानी म्युज़िक के पद पर कार्य करते थे। पं. जोग जी को अपने कार्यक्रम प्रस्तुति के लिए सर्वदा कोलकाता के बहार जाना पड़ता था । उन्होंने श्रीमती बैनर्जी को प्रख्यात बाँसुरी वादक पं. गौड़ गोस्वामी के शिष्य श्री देबप्रसाद बैनर्जी के पास भेजा तथा उनसे व्हायोलिन सीखने की अनुमति दी । अतः इनकी परवर्ती शिक्षा श्री देबप्रसाद बैनर्जी से हुई । उल्लेखनीय है कि, श्री देबप्रसाद बैनर्जी एक प्रसिद्ध बाँसुरी वादक के रूप में जाने जाते है । वह गायकी अंग में अपना वादन करते हैं । सन् 1980 में श्रीमती सुलया बैनर्जी एवं श्री देबप्रसाद बैनर्जी विवाह बन्धन में जुड़ गए । तत्पश्चात् इन्होंने देश-विदेश में व्हायोलिन के स्वतन्त्र वादन तथा बाँसुरी के साथ जुगलबन्दी के अनेक कार्यक्रम प्रस्तुत किए ।

पं. वी. जी. जोग से 'तन्त्रकारी' की शिक्षा तथा बाँसुरी वादक से 'गायकी अंग' में शिक्षा प्राप्त होने के कारण दोनों अंगों का मिश्रण इनके वादन में स्पष्ट दिखाई देता है।

श्री देबप्रसाद के पास शिक्षा का काल अधिक होने से बाँसुरी की शैली ही इनके वादन में प्रबल है। अतः तार वाद्य के 'तन्त्रकारी अंग' एवं बाँसुरी के 'गायकी अंग' दोनों के मिश्रण से जब वह अपना वादन प्रस्तुत करती हैं तो श्रोता भी भरपूर आनन्द लेते है तथा बाँसुरी और व्हायोलिन की जुगलबन्दी से तो श्रोता झूम उठते हैं ।

श्रीमती सुलया बैनर्जी अपने स्वतन्त्र वादन में पाँच तारवाले व्हायोलिन का इस्तेमाल करती हैं । व्हायोलिन के तारों का संयोजन वह सा़ (मन्द्र), प़ (मन्द्र), सा (मध्य), प (मध्य) सां (तार) स्वरों में करती हैं ।

वह अपने वादन का प्रारम्भ रागों की पकड़ से करती है। पकड़ से राग परिचय के बाद ताल पकड़कर विलम्बित लय द्वारा स्थायी का वादन तथा मन्द्र और मध्य सप्तकों में क्रमबद्ध आलाप के पश्चात् तार-सप्तक के षड़ज स्वर पर न्यास करके अन्तरा को प्रस्तुत करती हैं। मध्य व तार-सप्तक में अन्तरे के आलाप-विस्तार का वादन करके वापस मध्य-सप्तक के षड़ज पर पहुँचकर विस्तार को समाप्त करती हैं । तत्पश्चात् स्थायी की मुखड़े से जोड़ अंग का वादन करती हैं । जोड़ के वादन में विविध प्रकार की लयकारी को वह अपने ढंग से प्रस्तुत करती हैं जो अत्यन्त मनोरंजक होता हैं । जोड़ अंग के बाद विभिन्न तिहाइ युक्त तानों के वादन से विलम्बित बन्दिश को समाप्त करती हैं । विलम्बित गत् या बन्दिश की योग्य प्रस्तुति के बाद मध्य या द्रुत लय में स्थायी-अन्तरा तथा उसमें सरल विस्तार, ज़मज़मा एवं विभिन्न वैचित्र्यपूर्ण तानों का प्रयोग इनके वादन को विशेष आकर्षण प्रदान करता है । अन्त में वाद्य-संगीत की अन्तिम वादन अर्थात 'झाले' के विभिन्न प्रकारों को अति द्रुत लय में प्रस्तुत करने के बाद एक मजेदार तिहाइ से अपना वादना समाप्त करती हैं । इनकी मान्यता यह है कि व्हायोलिन एक सम्पूर्ण वाद्य है, अतः इसमें गायकी तथा तन्त्रकारी दोनों ही शैलियों को सुन्दर रूप से प्रस्तुत किया जा सकता है । यद्यपि व्हायोलिन एक तार वाद्य है, अतः इसमें तार वाद्यों की विशेषताओं को प्रस्तुत करना भी वह उचित समझती हैं ।

उल्लेखनीय है कि श्रीमती सुलया बैनर्जी कुछ साल रवीन्द्र भारती विश्वविद्यालय (कोलकाता) के वाद्य-संगीत विभाग में प्राध्यापक के पद पर कार्यरत रहीं । वर्तमान में अपने कार्यक्रम प्रस्तुति के साथ-साथ वह देशी-विदेशी अनेक विद्यार्थीओं को व्हायोलिन वादन की शिक्षा दे रहीं हैं ।

पं. वी. जी. जोग के साथ व्हायोलिन वादन करते हुए श्रीमती सुलया बैनर्जी

श्री विश्वजित राय चौधुरी

बंगाल के संगीत-जगत में एक परिचित नाम है विश्वजित राय चौधुरी । वह एक प्रतिष्ठित व्हायोलिन वादक है । इनका जन्म 31 दिसम्बर, सन् 1963 को गौहाटी (असम) में हुआ । इनके पिता श्री दिनेश राय चौधुरी एक संगीत प्रेमी थे ।

बाल्यावस्था में इन्होंने अपनी प्रारम्भिक शिक्षा प्रसिद्ध संगीतकार श्री निताई सरकार से प्राप्त की । तत्पश्चात् सन् 1980 से प्रख्यात व्हायोलिन वादक पद्मभूषण पं. पी. जी. जोग के सम्बन्ध में आए एवं सालों तक उनसे शिक्षा प्राप्त करने के पश्चात् एक प्रतिष्ठित व्हायोलिन वादक के रूप में परिचित हो गए। अपने वादन प्रस्तुति के दौरान उन्हें अनेक पुरस्कार भी प्राप्त हुआ। अपने गुरूजी पं. वी. जी. जोग के साथ भारत के विभिन्न प्रदेशों में कार्यक्रम प्रस्तुत करके इन्होंने अत्यधिक सुनाम अर्जित किया है। I. C. C. R (Indian Council for Cultural Relations) तथा S. R. A (Sangeet Research Academy) जैसी संस्थाओं के सम्मेलनों में भी इन्होंने भाग लिया तथा अपने कार्यक्रम प्रस्तुति के द्वारा संगीत प्रेमी श्रोताओं के मन में उच्च स्थान बनाने में सफल हुए ।

शास्त्रीय वादन के लिए वह पाँच तारवाले व्हायोलिन का इस्तेमाल करते हैं । इसमें वह तारों का संयोजन स़ा (मन्द्र), प़ (मन्द्र), सा (मध्य), प (मध्य), सां (तार) इन स्वरों में करते हैं। श्री चौधुरी की असली शिक्षा प्रसिद्ध व्हायोलिन वादक पं. वी. जी. जोग से होने के कारण इनके वादन में पं. जोग साहब की वादन शैली का प्रभाव स्पष्ट है । तन्त्रकारी के साथ गायकी अंग का कुछ अंश भी इनके वादन में दिखाई देता है । प्रारम्भ में वह आलाप एवं जोड़ का वादन करते हैं । तत्पश्चात् ताल में विलम्बित, मध्य लय एवं द्रुत लय की गतों का वादन तथा इनमें आलाप-विस्तार, जोड़ तथा लयकारी की तानों आदि का वादन करते हैं । एक बो तथा कट बो से वह विविध आकर्षक तानों का वादन करते हैं । तानों के साथ छोटी-छोटी तिहाइयों को भी बड़ी सुन्दरता से प्रयुक्त करते हुए 'सम' पर मिलते हैं। अन्त में वह 'झाला' का वादन करते हैं जो अत्यन्त प्रभावित करता हैं । उपशास्त्रीय संगीत के अन्तर्गत वह ठुमरी आदि का भी वादन करते हैं । गज़ संचालन एवं अँगुली चालना में वह आवश्यकतानुसार सारंगी की तकनीक तथा दक्षिण भारतीय व्हायोलिन तकनीक का भी प्रयोग करते हैं ।

स्वतन्त्र वादन के अतिरिक्त वह व्हायोलिन से गायन की संगत भी उत्कृष्टता से करते हैं। श्रीमती गिरिजा देवी (ठुमरी गायिका), उस्ताद मशकुर अली खाँ (शास्त्रीय गायक), गुरू केलुचरण महापात्र (अड़िसी नृत्यकार) जैसे प्रसिद्ध कलाकारों के साथ-संगत करके इन्होंने काफी प्रशंसा प्राप्त की है ।

कुछ साल इन्होंने रवीन्द्र भारती विश्वविद्यालय (कोलकाता) के वाद्य-संगीत विभाग में प्राध्यापक के पद पर कार्य किया । वर्तमान में वह कोलकाता के विभिन्न प्रतिष्ठित संगीत शिक्षालय, जैसे - वाणीचक्र, विरला अकादमी, नृत्यकला संगम, एवं आशावरी आदि शिक्षालयों में अपनी सेवा देने में व्यस्त हैं ।

श्री विश्वजित राय चौधुरी

श्री समीर शील

श्री समीर शील प्रसिद्ध व्हायोलिन वादक श्री परितोष शील के सुपुत्र। इनका जन्म 13 नवम्बर, सन् 1947 को कोलकाता में हुआ । इन्होंने अपनी प्रारम्भिक शिक्षा अपने पिता से ही प्राप्त की थी । पिता से भारतीय तथा पाश्चात्य संगीत में शिक्षा प्राप्त करने के बाद इन्होंने पाश्चात्य संगीत गुरू Mr. Stanley Gomes से मार्गदर्शन प्राप्त किया । वह इग्लैण्ड चले गए और वहाँ 'Royal College of Music' से व्हायोलिन में Ph. D समाप्त करके स्वदेश लौटकर संगीत-क्षेत्र में अपना कार्य आरम्भ किया । श्री समीर शील आकाशवाणी तथा दूरदर्शन (DD-7) में नियमित कलाकार रहे । स्वतन्त्र व्हायोलिन वादक के अतिरिक्त वह एक उत्कृष्ट सहयोगी वादक भी थे । उल्लेखनीय है कि, श्री समीर शील व्हायोलिन वादक के अलावा संगीत निर्देशक तथा रचनाकार भी थे । भारत के अनेक विख्यात गायक-गायिकाओं के गीतों को उन्होंने संगीत से सजाया तथा व्हायोलिन का वादन भी किया । जैसे - हेमन्त मुखर्जी, मन्ना डे, लता मंगेशकर, सन्ध्या मुखर्जी, हैमन्ती शुक्ला, कविता कृष्णमूर्ती प्रमुख । अनेक बांग्ला फ़िल्मों में उन्होंने संगीत निर्देशक का काम किया । उनमें विद्रोही, अभिशाप आदि उल्लेखनीय है । सत्यजित राय (प्रख्यात फ़िल्म निर्देशक) के फ़िल्मों में भी उन्होंने काम किया। उनमें विख्यात फ़िल्म सोनार केल्ला (Golden fort), घरे-बाईरे आदि उल्लेखनीय है। वी. बलसारा तथा सलील चौधुरी जैसे भारत विख्यात संगीत रचनाकारों के संगीत में श्री शील ने सालों तक एक सार्थक सहयोगी वादक के नाते अपना वादन किया । व्हायोलिन के अतिरिक्त वह व्हायोला नामक वाद्य का वादन भी करते थे । व्हायोला में वह पाश्चात्य शास्त्रीय संगीत का वादन बड़े उत्कृष्टता से करते थे । वह अपने पिता के समान ही पाश्चात्य शैली में तथा सुर में व्हायोलिन को मिलाकर रें प सा म़ (E A D G) अपना वादन प्रस्तुत करते थे । बचपन में उन्होंने उस्ताद अमीर खाँ, उस्ताद गुलाम अली खाँ साहब का गायन खूब सुना था, जिसकी छाया उनके व्हायोलिन वादन में पाई जाती है । तन्त्रकारी के कुछ अंश भी उनके शैली में सम्मिलित है। इनकी विशेषता यह थी कि वह व्हायोलिन में पाश्चात्य तथा भारतीय दोनों ही प्रकार का शास्त्रीय वादन करते थे । बंगाल के अनेक विद्यार्थी उनसे शिक्षा प्राप्त करके संगीत-क्षेत्र में अपने-अपने कार्य में व्यस्त हैं । दिनांक 15 फरवरी, सन् 2004 को कोलकाता के दमदम में इनका निधन हो गया ।

सहायक ग्रन्थावली

1. हमारे संगीत रत्न - सम्पादक : लक्ष्मीनारायण गर्ग
2. तन्त्रीवादक - डॉ. प्रकाश महाडिक
3. वाद्ययन्त्र प्रसंग - मोबारक हुसैन खान
4. संबीक्षण (संस्कृति एवं संगीत विषयक पत्रिका) - सम्पादक : जयन्त राय
5. Musicians of India, Past and Present - Amal Das Sharma एवं Internet से प्राप्त तथ्य तथा साक्षात्कार के आधार पर ।